आहाहा! कारयिता नहीं। उसका करनेवाला नहीं, करानेवाला नहीं। तथा **पुद्गलकर्मरूप कर्ता का...** आहाहा! ये चौदह मार्गणास्थान, चौदह जीवस्थान, चौदह गुणस्थान, ये भी **पुद्गलकर्मरूप कर्ता का अनुमोदक नहीं...** बहुत सूक्ष्म बात। **(ऐसा वर्णन किया जाता है)।**

मैं नारकपर्याय को नहीं करता,... आहाहा! जिसे सम्यग्दर्शन करना हो, धर्म की पहली सीढ़ी, धर्म का पहला सोपान चढ़ना हो तो उसे अभेद चैतन्यस्वरूप-जिसमें नारकी की गति की पर्याय का भी मैं कर्ता नहीं। ऐसा करानेवाला नहीं, तथा अनुमोदक नहीं। आहाहा! है ? नारकी की पर्याय का मैं कर्ता नहीं। गति, हों! गति। शरीर नहीं। नारकी की पर्याय की जो गति है, उसका कर्ता नहीं, करानेवाला नहीं तथा उसका मैं अनुमोदक नहीं। क्योंकि वे सब पुद्गल के कार्य के भेद हैं। आहाहा!

सहज चैतन्य के विलासस्वरूप... भगवान आत्मा स्वाभाविक चैतन्य का विलास ज्ञान और आनन्द के स्वभाव से परिपूर्ण से भरपूर प्रभु के **चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही भाता हूँ।** आहाहा! इसका नाम सम्यग्दर्शन, ज्ञान और धर्म। बहुत कठिन बात। जगत को कहाँ से कहाँ...! यह नारक की बात की है। फिर कहेंगे। **सहज चैतन्य के विलासस्वरूप...** भगवान ज्ञान और आनन्दस्वरूप प्रभु, ऐसा जो आत्मा है, उसे मैं **भाता हूँ।** मेरी पर्याय में उसे मैं भाता हूँ। आहाहा!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : अनुभव करता हूँ। भाता हूँ अर्थात् अनुभव करता हूँ। त्रिकाली सहज चैतन्य विलास ऐसा भगवान आत्मा, उसे मैं अनुभव करता हूँ, भाता हूँ, उसकी ओर

की दृष्टि से मेरी अनुभूति की परिणति प्रगट होती है। आहाहा! ऐसी बातें। अनन्त काल से भटकता है। चौरासी के अवतार (में भटकता है), उसके मिटने का उपाय तो यह एक है। जिसमें कर्म और कर्म के कार्य तथा भेद जिसमें नहीं है, ऐसा जो सहज चैतन्य विलास प्रभु। निर्जरा अधिकार में आ गया है कि उतना सत्य है कि जितना यह आत्मा ज्ञानस्वरूप है। यह ज्ञानस्वरूप है, उतना ही सत्य है। आहाहा! उसकी रुचि करना, उसकी रति करना, उसका प्रेम करना। आहाहा!

दुनिया के सब भावों की ओर से उदास होकर अपने में भी भेदरूप जो दशा है, उस ओर से भी उदास होकर... आहाहा! ज्ञानानन्दस्वभाव भगवान प्रभु के विलास को मैं भाता हूँ। वर्तमान में उसकी अनुभूति को मैं करता हूँ, ऐसा कहते हैं। आहाहा! चैतन्य के विलास का अनुभव करता हूँ। वह धर्म और वह मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! ऐसी बातें! अब कहाँ पहुँचना?

तथा **मैं तिर्यंचपर्याय को नहीं करता,...** तिर्यंच की पर्याय एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय, वह कर्म का कार्य है। मैं तिर्यंचपर्याय को नहीं करता। आहाहा! नारकी का जीव हो, समकिती, नारक में भी समकिती जीव होते हैं, वे कहते हैं कि नरक की पर्याय को मैं नहीं करता, कराता नहीं, मेरा अनुमोदन नहीं। मैं तो चैतन्य विलास की भावना में अनुभव करता हूँ। वह मैं हूँ। आहाहा! ऐसा कठिन। यह प्रतिक्रमण-निश्चयप्रतिक्रमण। व्यवहार प्रतिक्रमण तो विकल्प और राग है। वह आत्मा के स्वरूप में नहीं है। आहाहा!

तिर्यंच में रहा हुआ समकिती जीव। तिर्यंच-पशु में सिंह और बाघ और मच्छ। हजार योजन का मच्छ समकिती है। वह कहता (मानता) है कि मैं तिर्यंच पर्याय को नहीं करता। आहाहा! तिर्यंच गति को मैं नहीं करता, नहीं कराता, वह गति जो कर्म के कारण हुई, उसका अनुमोदन नहीं है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! जन्म-मरण मिटाने की विधि, बापू! बहुत सूक्ष्म मार्ग है। आहाहा! अभी तो मुश्किल हो पड़ी है। बाहर में धमाधम और बाहर में सब मान बैठे हैं।

यहाँ तो कहते हैं कि तिर्यंच की पर्याय में समकिती जो है, वह कहता है कि मैं इस तिर्यंच की पर्याय को करता नहीं, कराता नहीं, अनुमोदक नहीं। **चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही भाता हूँ।** आहाहा! चैतन्यस्वरूप जो भगवान आत्मा, ज्ञानस्वरूपी प्रभु,

आनन्दस्वरूपी प्रभु की भावना की एकाग्रता को मैं भाता हूँ। आहाहा! इसका नाम मोक्ष का मार्ग, इसका नाम सच्चा प्रतिक्रमण है। पर से हटकर अन्दर चैतन्य के विलास की क्रीड़ा और आनन्द का अनुभव, वह निश्चय प्रतिक्रमण है। आहाहा! इस (तिर्यंच) पर्याय को करता नहीं। **सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही भाता हूँ।** अब मनुष्य आया।

मैं मनुष्यपर्याय को नहीं करता,... आहाहा! शरीर नहीं। मनुष्य की गति की पर्याय जो उदयभाव है, उसे मैं नहीं करता। उस मनुष्य की गति की पर्याय को मैं नहीं कराता तथा उस कर्म से हुई मनुष्य की गति का मैं अनुमोदन (करता) नहीं। ऐसा मार्ग।

पहले निर्जरा अधिकार में आ गया है। उतना ही सत्य है कि जितना ज्ञान है, वह आत्मा; उतना ही कल्याण है कि जितना ज्ञान है, उतना आत्मा; उतना ही अनुभवनीय है कि जितना यह ज्ञानस्वभाव है, उतना ही अनुभवनीय है, वह आत्मा। आहाहा! अरे रे! निवृत्ति कहाँ है? फुर्सत कहाँ है? परिभ्रमण के कारण (फुर्सत नहीं है)। देह की स्थिति तो अल्प काल है। यह स्थिति तो समाप्त हो जाएगी। आत्मा तो अनादि-अनन्त है।

अब कहते हैं कि अनादि-अनन्त ऐसा जो मैं, वह मेरा चैतन्यस्वभाव, उसके विलास की भावना में मैं हूँ। आहाहा! राग नहीं और यह गति नहीं। लोग कहे न कि मनुष्यगति होवे तो धर्म होता है। आहाहा! मनुष्यगति होवे तो केवलज्ञान होता है। यहाँ इनकार करते हैं, भाई! वह गति ही तेरा स्वरूप नहीं। आहाहा! अन्दर चैतन्य का चौका जैसे मैसूर का चौका होता है न? वैसे भगवान आनन्द और ज्ञान का चौका अन्तरदल, आनन्ददल पड़ा है। नित्यानन्द प्रभु, चैतन्य के स्वभाव से भरपूर, आनन्द के स्वभाव से भरपूर, प्रभुता के स्वभाव से भरपूर प्रभु की भावना में मैं मनुष्य की गति की पर्याय को अनुमोदन नहीं करता कि मनुष्य की गति मिली तो मुझे ठीक हुआ। आहाहा! कठिन काम है।

सवेरे समाधिशतक में आया था। मैं दूसरे को उपदेश दूँ और उपदेश सुनूँ... आहाहा! दोनों उन्मत्तता है, दोनों विकल्प है। कठिन बात है, बापू! जन्म-मरणरहित की बात, परमात्मा की; जिनेन्द्रदेव के अतिरिक्त यह बात अन्यत्र कहीं नहीं होती। आहाहा! कहते हैं कि मैं आत्मा उपदेश सुनूँ या उपदेश करूँ; यह मेरे चीज़ निर्विकल्प है, उसमें यह विकल्प है, वह उन्माद है। आहाहा! सवेरे आया था समाधिशतक में? सवेरे आया था।

आहाहा! मैं दूसरों को उपदेश करूँ, ऐसा एक विकल्प है और मैं उपदेश सुनूँ, यह भी एक विकल्प-राग है।

मुमुक्षु : यह तो चारित्र का राग है। श्रद्धा की कहाँ बात है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह राग विकल्प है, परन्तु इससे लाभ माने तो मिथ्यात्व है, ऐसा कहते हैं। भले चारित्रदोष है, परन्तु सुनने के विकल्प से मुझे ज्ञान होगा और सुनाने के लिए मैं दूसरों को सुनाऊँ, इससे दूसरे को ज्ञान होगा, (यह) मिथ्यात्व है। कठिन बात है, प्रभु! आहाहा!

बीस-बीस वर्ष के, बीस-पच्चीस वर्ष के युवक। ऐसे अनजाने एकदम झट मरते हैं और फिर कहाँ (अवतरित होते हैं)। कल सड़क पर दो कुत्ते मर गये, भाई! इस सड़क पर। रविवार था न! बाहर जाते हैं न? ऐसे जवान कुत्ते, परन्तु ट्रक की चपेट आयी होगी। मरे हुए दो पड़े थे। आहाहा! देखो! यह अवतार! वापस उसे मरकर ढोर में जाने का हो। बेचारा बहुत माँस आदि न खाता हो तो नरक न हो। बाकी मनुष्य, देव तो होता ही नहीं। आहाहा! यह तिर्यंच का अवतार और फिर मरकर वापस कहीं गिलहरी, कौआ या कुत्ते में अवतरित हो। आहाहा! ऐसे अवतार कर-करके घानी में पिल गया है। वह दुःखी है, भाई! आहाहा! पैसेवाले दुःखी, राजा दुःखी, रंक दुःखी, देव दुःखी।

भगवान आत्मा में मनुष्य की पर्याय मिली, वह भी मेरा कर्तव्य नहीं है, मेरा कार्य नहीं है। आहाहा! मुझे वह मिली, वह ठीक है—ऐसा अनुमोदन करनेवाला नहीं कि मनुष्यपना मिला, वह मुझे सुनने को मिलेगा, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें हैं, बापू!

मुमुक्षु : पुण्य होवे तो सुनने को मिले...

पूज्य गुरुदेवश्री : सुनने को मिले तो उससे क्या हुआ? इससे उसके आत्मा को क्या हुआ? आत्मा आनन्दमूर्ति भगवान के ओर की दृष्टि बिना जितना सुनने आदि का करे, वह सब विकल्प है। आहाहा! यह श्लोक समाधिशतक में आया है। 'देह से आत्मा भिन्न है, ऐसा कहे, बोले, सुने, उससे क्या है?' आहाहा! सवेरे श्लोक आया था। समाधिशतक और इष्टोपदेश। आहाहा!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह मैं नहीं, कहते हैं। यह सुनना और सुनाना, वह भी एक विकल्प है, वह उन्मत्तता है। आहाहा! क्योंकि प्रभु आत्मा में वह विकल्प है ही नहीं, वह तो निर्विकल्प वीतरागमूर्ति प्रभु है। आहाहा! तेरा उत्साह पर में जाता है और पर में स्व के उत्साह में तू अटक गया है। आहाहा! जो स्व में उत्साह से जाना चाहिए, उल्लसित वीर्य से अन्दर में जाना चाहिए। आहाहा! उल्लास के वीर्य से अन्दर में ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा में जाना चाहिए, उसके बदले यह मनुष्यपना मिला, वह ठीक है, सुनने को मिला वह ठीक है, कहते हैं यह सब सत्य का खून करनेवाला है। आहाहा!

मुमुक्षु : गुरु उपदेश बिना....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह गुरु उपदेश... यह समाधिशतक में आया था। यह दोनों में आया है। इष्टोपदेश और समाधिशतक में आया था। स्वयं गुरु है, ऐसा आया था। सवेरे आया था? परन्तु ध्यान रखे तो... गुरु स्वयं है। स्वयं अपने को चैतन्यविलासरूपी अनुभव करे, वह गुरु स्वयं है। आहाहा! उसमें आया था। समाधिशतक में और इष्टोपदेश दोनों में आया है। आहाहा!

यहाँ तो निरालम्बी भगवान अन्दर, जिसे किसी का अवलम्बन ही नहीं, ऐसा चैतन्य विलासी भगवान आत्मा... आहाहा! ऐसे चैतन्यस्वरूप के विलास को मैं तो अनुभव करता हूँ और भाता हूँ। बाकी दूसरी कोई चीज़ मेरी नहीं है। आहाहा! पैसा, स्त्री-कुटुम्ब तो कहीं रह गये, बापू! वे तो तेरी पर्याय में भी नहीं। यहाँ तो तेरी पर्याय में गुणस्थान है, जीवस्थान है, मार्गणास्थान है, (वे भी तेरे नहीं हैं, ऐसा कहते हैं)। आहाहा! समझ में आया? यह आत्मा द्रव्य और गुण तो ध्रुव है, इसकी पर्याय जो वर्तमान अवस्था, उसमें शरीर, कर्म, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार वे पर्याय में नहीं हैं, वे तो उसमें-पर में हैं। आहाहा! परन्तु इसकी पर्याय में जो भेद हैं... आहाहा! इसकी पर्याय में गुणस्थान के, जीवस्थान के, मार्गणास्थान के भेद हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : वह जीव का स्वरूप कहाँ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : उस त्रिकालीस्वरूप का अवलम्बन लेने पर, वे अपनी चीज़ हैं ही नहीं; यदि अपनी हो तो कायम रहे। आहाहा!

मुमुक्षु : वे तो पुद्गल के परिणाम कहे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे पुद्गल के ही परिणाम हैं। भगवान आत्मा का वह स्वरूप ही नहीं है। आहाहा! निर्जरा अधिकार में तो वहाँ तक कहा है न, कि ऐसे अजीव के भेदों को यदि मैं मेरे मानूँ तो मैं अजीव हो जाऊँ। एक गाथा है। आहाहा! मैं तो जीव ज्ञायकस्वरूपी प्रभु हूँ। ऐसे भेद को मैं मेरे मानूँ (तो मैं अजीव हो जाऊँ)। आहाहा! विकार को, राग को, भेद, ये सब पुद्गल के परिणाम हैं। आहाहा! उन्हें यदि मैं मेरे मानूँ तो मैं अजीव हो जाऊँ और उस अजीव का स्वामी वह अजीव होता है। भैंस का स्वामी पाड़ा होता है; वैसे उस अजीव का स्वामी मैं होऊँ तो मैं अजीव हो जाऊँ। आहाहा! कहो, भूपतभाई! ऐसी बातें हैं। जगत का उत्साह और जगत के हर्ष का जोश उतर जाये, ऐसा है। आहाहा! प्रवीणभाई!

भगवान आत्मा... यहाँ अपने मनुष्य की पर्याय (की बात) चलती है न? **मैं मनुष्यपर्याय को नहीं करता,...** मैंने मनुष्यपर्याय की नहीं। गति, हों! शरीर नहीं। यह तो जड़-मिट्टी है। यह मनुष्यपर्याय नहीं। यह तो शरीर की जड़ की दशा है। अन्दर मनुष्यगति की पर्याय, वह मैं नहीं हूँ। आहाहा! मैंने की नहीं। वह मनुष्य की पर्याय मैंने कर्म से करायी नहीं तथा की हुई है, उसे मेरा अनुमोदन नहीं।

सहज चैतन्य के विलासस्वरूप... स्वाभाविक चैतन्य का विलास जो आनन्द का सागर नाथ, उस पर मेरा झुकाव होने से मैं उसे भाता हूँ। आहाहा! कठिन बात है, भाई! (यह) निश्चयप्रतिक्रमण। अब लोगों को ऐसा कि व्यवहारप्रतिक्रमण करें तो निश्चय होता है। यहाँ कहते हैं, परन्तु व्यवहारप्रतिक्रमण का विकल्प है, वह पुद्गल का परिणाम है। ले! आहाहा!

मैं एक सत्यस्वरूप चैतन्यविलास के स्वभाव से भरपूर प्रभु, जिसमें अनन्त गुण का सागर भरा है। आहाहा! अनन्त गुण के थैले अन्दर भरे हैं। ऐसा जो मैं चैतन्यविलासी आत्मा, उसकी भावना को मैं भाता हूँ। मनुष्य की पर्याय को मैं अनुमोदन भी नहीं करता कि ठीक हुआ, मुझे मनुष्यपना मिला।

वैसे तो श्रीमद् में वह गाया नहीं? 'बहु पुण्य पुंज प्रसंग से शुभ देह मानव का मिला, तो भी अरे भवचक्र का फेरा नहीं एक ही टला। सुख प्राप्ति हेतु प्रयत्न करते सुख जाता दूर है।' इसमें सुख है.. इसमें सुख है.. इसमें सुख है.. पैसे में सुख है, इज्जत में सुख है, भोग में सुख है। यह 'सुख प्राप्ति हेतु प्रयत्न करते सुख जाता दूर है।' प्रभु! तेरे आनन्द का वहाँ

नाश होता है। आहाहा! 'सुख प्राप्ति हेतु प्रयत्न करते सुख जाता दूर है। तू क्यों भयंकर भावमरण प्रवाह में चकचूर है...' श्रीमद् राजचन्द्र, सोलह वर्ष में कहते हैं। देह की सोलह वर्ष की उम्र। आत्मा तो अनादि-अनन्त है। सोलह वर्ष में! 'तू क्यों भयंकर भावमरण प्रवाह में चकचूर है...' अरे रे! राग और बाहर की पर्याय में (तूने) प्रेम किया। वह क्षण-क्षण भयंकर भावमरण हो रहा है तेरा। चैतन्य की जागती ज्योति का अनादर करके और इन गति, राग, और पुण्य आदि के प्रेम में पड़ा, प्रभु! आहाहा! क्षण-क्षण भयंकर भावमरण हो रहा है। देह के छूटने के काल में तो देह का मरण (होगा) परन्तु यह तो भावमरण तो क्षण-क्षण में हो रहा है। आहाहा! राग मैं और पुण्य मैं और मनुष्य मैं.. आहाहा! यहाँ समाधिशतक में तो यहाँ तक लिया... आहाहा! मैं सुनूँ तो मुझे ज्ञान होता है, मैं दूसरों को सुनाऊँ तो उन्हें ज्ञान होता है। आहाहा! यह तो कहते हैं कि उन्मत्तदशा है, प्रभु! आहाहा! निर्विकल्प भगवान आत्मा में विकल्प उठाना है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि इस विकल्प का मैं कर्ता नहीं, करानेवाला नहीं, अनुमोदक नहीं। मैं तो चैतन्यस्वरूप का विलास, उसमें मैंने मेरी रमणता की है। 'निजपद रमै सो राम कहिये।' आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा में रमे, वह राम। बाकी गति आदि राग में रमे, वह हराम है। ऐसा है, प्रभु! आहाहा!

तेरी प्रभुता का पार नहीं, प्रभु! वाणी में भी पूर्ण प्रभुता आयी नहीं। ऐसी एक अपेक्षा से ५ वीं गाथा में पूर्ण कही है।

जो पद झलके श्री जिनवर के ज्ञान में,
कह न सके पर वह भी श्री भगवान जब।
उस स्वरूप को अन्य वचन से क्या कहूँ,
अनुभवगोचार मात्र रहा वह ज्ञान जब॥
अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा॥
कब होऊँगा बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ जब॥

आहाहा! नग्न दिगम्बर मुनि होकर अन्तरध्यान में कब जम जाएँगे। आहाहा! सोलह वर्ष में भावना भाते हैं। आहाहा! सोलह वर्ष की उम्र! पूर्व के संस्कार लेकर आये थे। भगवान के निकट दिगम्बर साधु हुए थे परन्तु द्रव्यलिंगी,इसलिए कुछ... आहाहा!

यहाँ कहते हैं, मैं मनुष्य की पर्याय का अनुमोदन नहीं करता। आहाहा! एक व्यक्ति पण्डित आया था। वह ऐसा कहता था कि मनुष्यपर्याय मिले तो केवलज्ञान होता है। व्रजनाराचसंहनन होवे तो केवलज्ञान होता है। कहा, भाई! ऐसा नहीं है, बापू! आहाहा! वह केवलज्ञान तो चैतन्य के विलास की रमणता करने से केवलज्ञान होता है। वह संहनन और मनुष्य की गति से केवलज्ञान होता नहीं है। पण्डित था न? कहाँ का? घासीलालजी, कुचामन का था। बहुत वर्ष पहले आया था। बहुत आते हैं, बहुत आते हैं। अरे! प्रभु! क्या हो? आहाहा!

यहाँ कहते हैं, मनुष्य की पर्याय को मैं नहीं करता, नहीं कराता, अनुमोदन नहीं करता। **सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही...** भाषा है? आत्मा को ही। कैसा चैतन्य? कैसा? कि **सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही...** आहाहा! आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा अन्दर है, उसे मैं तो भाता हूँ। आहाहा! मेरा नाथ अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर प्रभु है, उसकी मैं भावना भाता हूँ। बाकी दूसरी कोई चीज़ मेरी नहीं है। आहाहा! कहो, भण्डारीजी! यह भण्डार यहाँ है।

मुमुक्षु : दो भण्डार है। एक बाहर में और एक अन्दर में।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह बाहर का भण्डार धूल का भण्डार है। आहाहा!

यहाँ तो प्रभु! तेरा भण्डार ऐसा अन्दर भरा है (कि) अनन्त गुण का खजाना निधान है। जिसमें से केवलज्ञान निकले तो भी पार न आवे, इतना खजाना अन्दर भरा है। केवलज्ञान... केवलज्ञान पर्याय निकले तो अनन्त-अनन्त निकले तो पार न आवे, इतना अन्दर खजाना है। आहाहा! भाई! परन्तु उसका विश्वास आना चाहिए। आहाहा! दूसरी ओर का विश्वास छोड़कर, इस स्वरूप का विश्वास आना, इस विश्वास से जहाज तिरता है। आहाहा! यह आनन्द का नाथ उसमें तिरकर मुक्ति को पाता है। आहाहा! बाकी कोई क्रियाकाण्ड और बाहर के कारणों से कुछ मिले, ऐसा नहीं है।

मैं देवपर्याय को नहीं करता,... ठीक। देवपर्याय। सम्यक्त्वी देव है। अभी शकेन्द्र एकावतारी है। पहले देवलोक में बत्तीस लाख विमान, उसमें असंख्य-असंख्य देवों का एक-एक विमान, ऐसे बहुत विमान। कोई संख्यात देव का विमान है। वे असंख्य देव के बत्तीस लाख विमान का स्वामी / चक्रवर्ती अभी शकेन्द्र है। आहाहा! वहाँ से मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाला है। वह देवपर्याय में ऐसा भाता है... आहाहा! मैं देवपर्याय नहीं हूँ। मुझे

देवपर्याय मिली, इसलिए मैं भगवान के पास जा सकता हूँ, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! इस देवपर्याय का मैं कर्ता नहीं हूँ; मैं देवपर्याय को करानेवाला नहीं हूँ; देवपर्याय हुई, वह कर्म का कार्य है, उसे मैं अनुमोदन करनेवाला नहीं हूँ। आहाहा! ऊथल-पुथल की बातें हैं, भाई! दुनिया से अलग जाति है, बापू! दुनिया को तो सब जाना है न? देखा है न? आहाहा! **सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही...** भाषा यह है। आत्मा को-एकान्त आत्मा को ही। आहाहा! इन भेदों की पर्याय को नहीं। अकेले आत्मा-चैतन्यस्वरूप की ही भावना करता हूँ। भावना शब्द से उसकी ही एकाग्रता है। आहाहा! यह पर्याय में मेरी एकाग्रता नहीं है। आहाहा!

मैं चौदह मार्गणास्थान के भेदों को नहीं करता,... आहाहा! ज्ञान के पाँच भेद और दर्शन के चार भेद तथा समकित के भेदों को और चारित्र के भेदों को, भव्य-अभव्य के भेद.. आहाहा! ऐसे भेदों को मैं नहीं करता। आहाहा! **सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही भाता हूँ।** आहाहा! स्वाभाविक चैतन्य का विलास भगवान अन्दर अनादि-अनन्त चीज़ पड़ी है। किसी ने की नहीं; हुई है, ऐसा नहीं; नाश होगा, ऐसा नहीं। है, वह वस्तु अविनाशी अन्दर प्रभु है। अनादि-अनन्त ऐसा चैतन्य भगवान, उसके विलास को मैं भाता हूँ। आहाहा! है? सूक्ष्म बात है परन्तु है ऊँची, बापू! प्रभु! मार्ग तो ऐसा है, भाई! दूसरे चाहे जिस प्रकार से ढीला करके बतावे (परन्तु वह मार्ग नहीं है)। आहाहा! तुम मन्दिर बनाओ, करोड़ों रुपये खर्च करो, अरबों खर्च करो, गौशाला बनाओ, दुःखी के आँसू पोंछों, भूखे को अनाज दो, प्यासे को पानी दो, स्थल न हो उसे जमीन आदि रहने के स्थान दो, तो तुम्हें कल्याण होगा। यहाँ कहते हैं कि इस बात में कुछ दम नहीं है। आहाहा! कौन दे? प्रभु! आहार के रजकण हैं, वे जड़ हैं, वे दे कौन? और ले कौन? पैसा मिट्टी है, धूल है, अजीव जड़ है। उसे ले कौन? दे कौन और रखे कौन? प्रवीणभाई! ये सब करोड़ोंपति बैठे हैं। धूलपति। करोड़ अर्थात् पैसा; पैसा अर्थात् धूल और धूल अर्थात् पति। आहाहा!

यहाँ प्रभु ऐसा कहते हैं, बापू! तू चैतन्यलक्ष्मी का भण्डार है न, प्रभु! तेरा विलास तो अन्दर कोई अलौकिक है, भाई! ज्ञान का विलास, आनन्द का विलास, प्रभुता का विलास, शान्ति का विलास.. आहाहा! समकित का विलास, चारित्र का विलास.. आहाहा! ऐसे जो भगवान आत्मा में भरे हुए अनन्त गुण, उसके विलास को मैं भाता हूँ। आहाहा! बात थोड़े शब्दों में (की है परन्तु) भाव बहुत भरे हैं, भाई!

लोग नहीं कहते अपने विवाह करते हैं तब ? थोड़ा लिखा बहुत जानना। कहते हैं न, दामाद-बामाद थोड़ा कठोर हो, दो-चार लड़कियाँ हों और दामाद कठोर हो तो ऐसा लिखते हैं कि मण्डप में आना तो शोभा होगी और थोड़ा लिखा बहुत जानना। हमारी लड़की को लेकर आना, मण्डप की शोभा होगी। ऐसा लिखते हैं। ऐसा लिखते हैं न ? किसका मण्डप ? बापू! सब भटकने का मण्डप है। यह मण्डप अन्दर भगवान चैतन्य का मण्डप अन्दर खोल। आहाहा! यह खजाना खोल अन्दर, भाई! यह खजाना अनन्त-अनन्त गुण से भरा है।

उसमें चौदह मार्गणा के भेद भी नहीं है। आहाहा! तथा उन्हें मैं कर्ता नहीं हूँ। बाद में कहेंगे। इन चौदह भेदों को मैं कर्ता नहीं हूँ, इन चौदह भेदों को मैं करानेवाला नहीं हूँ, चौदह भेदों का मैं अनुमोदक नहीं हूँ। आहाहा! गजब बात है। यह सब पाठ में है न ? वहाँ एक-एक लेकर बाद में कहा है।

प्रभु! आत्मा चैतन्यविलास अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द का सागर अन्दर भरा है, प्रभु! आहाहा! ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द के विलास में मैं भावना करते हुए, जगत की किसी चीज़ को मैं अनुमोदन नहीं करता। देवपर्याय, अरे! मुझमें पर्याय के भेद पड़ें, उसे भी नहीं करता। आहाहा! दूसरी चीज़ की तो बात एक ओर रही परन्तु यह चौदह भेद जो पड़ते हैं... आहाहा! उन्हें मैं करता नहीं, मैं कराता नहीं। वे तो कर्म के कारण भेद पड़े, इसलिए उन्हें अनुमोदन भी नहीं करता। आहाहा! मेरा नाथ तो अभेद अन्दर चैतन्य प्रभु, पूर्णानन्द का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु सिद्धस्वरूपी अन्दर विराजमान है। आहाहा! अरे रे! ऐसा सुनने को मिले नहीं, वह कब जाए ? कब समझे ? और करे ? आहाहा! दुःखी.. दुःखी.. दुःखी.. अनन्त काल से भटकता है। आहाहा!

मैं मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानभेदों को नहीं करता,... गजब बात है। मिथ्यात्व, अविरत, सासादन, मिश्र, अविरतसम्यग्दृष्टि, पाँचवाँ गुणस्थान, छठवाँ, सातवाँ, आठवाँ, नौ, दस, ग्यारह, बारह और तेरह, चौदह - इन चौदह गुणस्थान आदि को नहीं करता। भेद हैं, उन्हें मैं नहीं करता। उन्हें मैं नहीं कराता। भेद पड़े, उन्हें मैं अनुमोदन नहीं करता। आहाहा! देखो! यह सच्चा प्रतिक्रमण। शाम-सवेरे प्रतिक्रमण करे, पहाड़े करे.. मिच्छामि दुक्कड़ं। हम भी दुकान पर सब करते थे, हों! पर्यूषण के आठ दिन आते हैं न ? तब

१८-१९ वर्ष की उम्र की बात है। ७०-७२ वर्ष पहले। प्रतिक्रमण करते थे। दस वर्ष की उम्र से प्रतिक्रमण कण्ठस्थ था। सामायिक, प्रतिक्रमण सब पहले से किया हुआ है न? वहाँ हमारे दुकान में सब लोग इकट्ठे हों, तब मैं कराता था और आठ दिन में चार उपवास करते थे। चौविहार (चतुर्विध आहार का त्याग), हों! उपवास। दुकान में बैठकर धन्धा करते, परन्तु चतुर्विध (आहार) त्याग (करके) अपवास और शाम को प्रतिक्रमण करते। कुछ भान नहीं होता। प्रतिक्रमण करे तो हमारे गांडाभाई और वे सब बेचारे सुनें। कोई खबर नहीं होती। फिर संघ को इकट्ठा करके भोजन करावे। अपने स्थानकवासी के जितने घर हों, उन सबको भोजन करावे। हमने पर्यूषण मनाये। धूल में भी कुछ नहीं। आहाहा! और वह तो फिर हमारे गांडाभाई थे, वे तो और सत्यनारायण की कथा भी करावे। कुछ खबर नहीं होती लोगों को। जैन नाम धरावे तो भी सत्यनारायण की कथा (करावे)! आहाहा!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : सत्यनारायण वहाँ कैसा सच्चा? सत्यनारायण तो यहाँ है।

मुमुक्षु : .....पूजे।

पूज्य गुरुदेवश्री : कबीर को पूजे और वह हमारे कुछ नहीं। कबीर क्या, वह कैसा शाह? हैदरशाह। हैदरशाह को पूजे। हमारे गांडाभाई के हैं न? कुँवरजीभाई के लड़कों ने छोड़ दिया। ये लड़के जो सवेरे आते हैं, इन्होंने छोड़ दिया। इनके परिवार की परम्परा में हैदरशाह यहाँ आये थे। वह हैदरशाह ऐसा कुछ बोले कि कुछ मुझे दो, तुम्हारे घर आया हूँ, तो उन्होंने कहा कि ओहोहो! फकीर को कहाँ से खबर पड़ी? घर में प्रसादी आया था, इसलिए उसमें से उन्हें पूजनीय माना हुआ, उन्हें बहुत माननेवाले हैं। मूढ़ जीव बहुत हैं उमराला में।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी रुपया नहीं। हैदरशाह को मानते थे, तब वे भीख माँगते थे। गांडाभाई के पिता तो कपड़े की फेरी करते थे। वहाँ हैदरशाह कहाँ गया था? और अभी सूरत में उनके लड़के के लड़के के पास करोड़ रुपये हैं। गांडाभाई के पास कुछ नहीं था। दो पाँच हजार रुपये होंगे। अभी करोड़ रुपये हैं। अभी उन्हें अकस्मात् हो गया

है। उसमें होवे, बापू! ये लोग मानें नहीं, अब यहाँ आनेवाले। हैदरशाह यहाँ पालीताणा है। पालीताणा हैदरशाह इस ओर सामने पीर का स्थान है। अरे रे! हैदरशाह कैसा? यहाँ तो तीन लोक के नाथ तीर्थंकर परमात्मा को मानना, वह भी राग है। आहाहा! भगवान तीन लोक के नाथ परमात्मा जिनेन्द्रदेव की पूजा करना, वह भी राग-पुण्य है, वह धर्म नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि मैं गुणस्थान के भेदों को नहीं करता। आहाहा! तेरहवाँ-चौदहवाँ गुणस्थान मैं नहीं करता। मैं तो अभेद चिदानन्द चैतन्य विलास से भरपूर भगवान हूँ। अभेद की दृष्टि में भेद का विलास आत्मा में है नहीं। आहाहा! हमारे अभेद में वह भेद दिखायी नहीं देता। अन्दर भगवान पूर्णानन्द के नाथ की दृष्टि होने पर, अभेद में दृष्टि होने पर भेद दिखायी नहीं देता, इसलिए वह भेद मेरा कर्तव्य नहीं है, कराता नहीं और मैं भेद को अनुमोदन नहीं करता। आहाहा! कहो, चिमनभाई! कैसा सुना था? तुम्हारे पिता ने यह सब सुना नहीं था। भक्ति करते थे श्रीमद् की। खबर है न? डेला में तुम्हारे घर बहुत बार आ गये हैं। हिम्मतभाई थे तब। यहाँ तो बहुत वर्ष हुए न? छियासठ वर्ष तो दीक्षा को हुए। यह मगसर शुक्ल नवमी को ६७ वाँ वर्ष लगेगा। नौवीं हुई न आज? कार्तिक शुक्ल नवमीं और मगसिर शुक्ल नवमी दीक्षा को ६७वाँ वर्ष लगेगा। छियासठ वर्ष पूरे होंगे। साढ़े तेईस वर्ष में दीक्षा ली थी। आहाहा! बहुत देखा, बहुत पढ़ा, बहुत मिले। यह चीज़ कोई अलग है। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा जिनेन्द्रदेव की ध्वनि में ऐसा आया, जितने भेद पड़ते हैं, उन भेद का कर्ता तू नहीं है। आहाहा! इन गुणस्थान के भेद का कर्ता नहीं, करानेवाला नहीं, अनुमोदक नहीं। आहाहा! है? **मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानभेदों को नहीं करता, सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही भाता हूँ। मैं एकेन्द्रियादि जीवस्थानभेदों को नहीं करता,...** एकेन्द्रिय, (बादर-सूक्ष्म) दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, संज्ञी, असंज्ञी, पर्याप्त और अपर्याप्त - ऐसे चौदह भेद हैं। जीव के चौदह भेद, वह मैं नहीं हूँ। भेद मुझमें नहीं हैं, भेद मैंने नहीं किये, मैं कर्ता नहीं और करानेवाला नहीं। आहाहा! यह पंचेन्द्रिय का पर्याप्तपना मैंने नहीं किया। आहाहा! कहो भूपतभाई! कैसा यह सुना नहीं कहीं। ये सब पैसेवाले बैठे। धूल-बूल इकट्ठी की। आहाहा!

तीन लोक का नाथ चैतन्य की लक्ष्मी से भरपूर प्रभु की दृष्टि करने से-अभेद की

दृष्टि में भेद का कर्ता मैं नहीं हूँ। आहाहा! राग का कर्ता नहीं, पर का कर्ता नहीं परन्तु भेद का भी कर्ता मैं नहीं। आहाहा! मेरी पर्याय में जो चीज़ नहीं, उसका तो मैं करता, कराता हूँ नहीं। मेरी पर्याय में रागादि हों, उनका भी करता-कराता नहीं, मेरी पर्याय में गुणस्थान के भेद हों उनका कर्ता-कारयिता-अनुमोदन करनेवाला नहीं हूँ। आहाहा! गजब बात है भाई! आहाहा! भाग्यशाली को तो कान में पड़े, ऐसा है। ऐसी वीतराग की बात है, बापू! तीन लोक का नाथ महाविदेह में विराजते हैं, उनकी यह वाणी है। परमात्मा... आहाहा!

एकेन्द्रिय आदि, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय। यह पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त वह मैं नहीं। पंचेन्द्रिय पर्याप्त मैं नहीं, पंचेन्द्रिय पर्याप्त मैंने किया नहीं, मैंने कराया नहीं और मैंने अनुमोदन किया नहीं। आहाहा! पंचेन्द्रियपना मिले तो सुनने को तो मिले। सुने तो (सही)। यह बात यहाँ निकाली नहीं। आहाहा! भगवान! यहाँ तो जन्म-मरणरहित की बातें हैं, प्रभु! जिससे भव मिले, वे बातें नहीं। भव मिले तो नरक और निगोद के भव, बापू! चींटी और कौवे के, ओहोहो! यह कल देखा था। यहाँ सड़क पर ऐसे दो लट्ठ जैसे कुत्ते थे। परन्तु किसी का धक्का लगा होगा, ट्रक का। लट्ठ जैसे थे। मर गये। सिर पर पहिया घूमा होगा। आहाहा! और वापस वे मरकर बेचारे ढोर में जाएँ कहीं। तिर्यंच में कहीं अवतरित हों। गिलहरी, बकरा, कुत्ता, और... आहाहा! ऐसे अवतार अनन्त किये, भाई!

आत्मा की अन्तर अभेददृष्टि नहीं की। भेद की दृष्टि भी नहीं छोड़ी। दूसरी तो ठीक परन्तु... आहाहा! चौदह गुणस्थान के जो भेद पड़े, जीवस्थान के, मार्गणास्थान के, वे भेद भी दृष्टि मेरी नहीं। आहाहा! मैं होवे उनका जाननेवाला अवश्य, परन्तु वे भेद मेरा कर्तव्य है, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसा है, भगवान! प्रभु भगवान है न! अन्दर प्रभु विराजता है। परमात्मा है। माताएँ और लड़कियाँ यह सब शरीर है, अन्दर तो भगवान है। यह तो मिट्टी-धूल का शरीर है। अन्दर परमात्मा चिदानन्द चैतन्य विलासी पड़ा है। प्रभु! आहाहा!

ऐसे भेद को मैं नहीं करता। **सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही...** भाषा देखी! सबमें आत्मा को ही एकान्त किया है। सम्यक् एकान्त। आहाहा! भेद को भाता नहीं, भेद में मैं कर्ता-कारयिता नहीं। मैं एक भगवान चैतन्यस्वरूप, ज्ञानानन्द प्रभु पूर्णानन्द आत्मा को ही मैं भाता हूँ अर्थात् उसी में मेरी एकाग्रता है, वही मेरी चीज़ है। आहाहा!

मैं शरीरसम्बन्धी बालादि अवस्थाभेदों को नहीं करता,... यह शरीर में बालक अवस्था, युवावस्था, वृद्ध अवस्था, वह मैं नहीं करता; वह तो जड़ का कार्य है। आहाहा! **शरीरसम्बन्धी बालादि...** बाल, युवा, वृद्ध और स्थविर। ऐसी अवस्थाओं को कर्ता नहीं। आहाहा! वृद्धावस्था हो गयी। युवा अवस्था अभी चलती है। बाल अवस्था बीत गयी। यहाँ कहते हैं, बाल अवस्था, युवा अवस्था, वृद्ध अवस्था, वह आत्मा में है ही नहीं, उस अवस्था को मैं करता नहीं, कराता नहीं और वह अवस्था जवानी की होवे तो धर्म में ठीक पड़े, (ऐसा) मैं उसे अनुमोदन नहीं करता। आहाहा! है?

बाल, यह चार भाव है, बाल, युवक, वृद्ध और स्थविर। इन चार भाव को मैं नहीं करता। आहाहा! तथा नहीं कराता। आहाहा! युवावस्था को मैं नहीं करता, मैं नहीं कराता। वह तो कर्म का कार्य है। तथा बहुत जवान है, इसलिए ठीक है, ऐसा अनुमोदन नहीं करता। आहाहा! वृद्ध अवस्था होती है, इसलिए इन्द्रियाँ शिथिल पड़ती है, इसलिए विषय कम होता है (कहते हैं), वृद्धावस्था हो तो वह मैं नहीं करता, नहीं कराता और अनुमोदन नहीं करता। आहाहा! **सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही भाता हूँ।** आहाहा!

मैं रागादिभेदरूप भावकर्म के भेदों को नहीं करता,... लो! पुण्य और पाप, दया, दान, व्रत और भक्ति, काम और क्रोध, ऐसे परिणाम को मैं नहीं करता, मैं उन्हें नहीं कराता, उन्हें होते हुए को मैं अनुमोदन नहीं करता। आहाहा! ऐसा कहीं सुना नहीं और पैसेवाले को सब लोग प्रसन्न कर दे। पाँच-पच्चीस लाख खर्च करे। प्रसन्न-प्रसन्न कर दे। ओहोहो! तुमने तो ऐसा किया धर्मधुरन्धर। पत्थर की तख्ती लगावे। नाम के लिए मेहनत करके। मेहनत करके तख्ती लगावे। इकट्ठा करके (दिखावे), देखो! मैंने ऐसा किया। हमारे नाम की तख्ती लगाओ। वापस दो-चार नाम लिखे। अमुक के हस्ते, अमुक के नाम से, अमुक के स्मरणार्थ। ऐसा है न? यह तो सब देखा है न? यहाँ तो ९१ वर्ष चलते हैं। बहुत देखा, बहुत सुना, बापू! पूरी जिन्दगी निवृत्ति में गयी है। तेरह वर्ष यहाँ उमराला में जन्मस्थान (में रहे)। नौ वर्ष दुकान में, चार वर्ष तो पिताजी थे (संवत्) १९४९ से १९६३। १९६३ से १९६८ पाँच वर्ष दुकान चलायी थी। १९६८ के वैशाख में दुकान छोड़ दी। १९६८ के वैशाख में। ७० में दीक्षा हुई स्थानकवासी में। आहाहा!

राग, पुण्य, दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम, इन भावकर्म के भेदों को मैं नहीं

करता। आहाहा! अभी तो वे पुकार करते हैं। एक श्रुतसागर दिगम्बर है। अभी तो शुभयोग ही होता है, बस! दूसरा कुछ नहीं होता। अरे! प्रभु! प्रभु! प्रभु! क्या करता है? भाई! ऐसा कहते हैं न कि भाई! शुभयोग ही है मेरे पास, धर्म हमें नहीं। ऐसा कहे तो अभी...

मुमुक्षु : तब तो मुनि मनाये नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनिपना, बापू! मुनिपना कोई अलौकिक बात है, भाई! आहाहा! यहाँ तो अभी सम्यग्दर्शन की बात चलती है यह तो। सम्यग्दर्शन में द्रव्य की दृष्टि ही होने से, अभेद की दृष्टि होने से भेद का कर्तव्य मेरा नहीं है, ऐसी बात चलती है। आहाहा! समझ में आया?

यह रागादि भेद। राग अर्थात् पुण्य, पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि के भाव, उन **भावकर्म के भेदों को नहीं करता,...** वह भाव का कर्तव्य मेरा नहीं है। वह मैं कराता नहीं। आहाहा! और करता हो, उसे मैं अनुमोदन नहीं करता। आहाहा! गजब बात है। अब फिर सोनगढ़वालों को ऐसा कहे न कि निश्चय की ही बातें करते हैं। परन्तु निश्चय अर्थात् सत्य। व्यवहार अर्थात् उपचारित आरोपित बातें हैं। सत्य तो यह है, प्रभु! सच्चिदानन्द नाथ अन्दर परमात्मस्वरूप विराजमान है, उसका आश्रय और उसकी अभेद की दृष्टि करना और भेद की दृष्टि छोड़ना, यह वीतराग के मार्ग का अन्तर का रहस्य तो यह है। आहाहा! बाकी सब बातें हैं। आहाहा! रागादि भावों को नहीं करता। आहाहा!

मैं भावकर्मात्मक चार कषायों को नहीं करता,... भावकर्म अर्थात् पुण्य-पापभाव। कषाय की बात यहाँ ली है। वे रागादि लिये थे। **सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही भाता हूँ।**

(यहाँ टीका में जिस प्रकार कर्ता के सम्बन्ध में वर्णन किया, उसी प्रकार कारयिता और अनुमन्ता—अनुमोदक के—सम्बन्ध में भी समझ लेना।) पाठ में कर्ता इतना ही है परन्तु कारयिता-अनुमोदक मैं नहीं - ऐसा साथ में समझ लेना। कर्ता शब्द पड़ा है। **इस प्रकार पाँच रत्नों के शोभित कथनविस्तार द्वारा सकल विभावपर्यायों के संन्यास का (-त्याग का) विधान कहा है।** आहाहा! इन पाँच रत्नों से शोभित गाथा। विस्तार द्वारा सकल विभावपर्याय... सकल विभावपर्याय के त्याग का विधान कहा है।

विशेष कहेंगे..... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)